विकास पर विश्वास से बढ़ा भाजपा का आधार

■ अवधेश कुमार
वरिष्ठ पत्रकार एवं विश्लेषक

पिछले चार दशक से ज्यादा समय से पश्चिम बंगाल में सत्ता परिवर्तन की लड़ाई हिंसक रही है। पहले कांग्रेस के सामने वाम दल थे। माकपा का सत्तारूढ़ कांग्रेस और सरकारी मशीनरी के साथ लंबे समय तक जंग चलता रहा। ममता बनर्जी ने कांग्रेस में रहते हुए वाम मोर्चा सरकार से टकराना शुरू किया लेकिन पार्टी का जैसा साथ चाहिए नहीं मिला तो उन्होंने अलग पार्टी बना कर लड़ाई लड़ी। आज जिस भाजपा से वो लड़ रही हैं, पहले उसी से हाथ मिलाया। जैसे-जैसे उनका विस्तार होता गया। उनकी पार्टी पर हमले भी बढ़ते गए लेकिन वह लड़ती रहीं। हालांकि इसमें भाजपा को बड़ी क्षति हो गई। भाजपा का रामजन्मभूमि आंदोलन के बाद बंगाल में तेजी से विस्तार हुआ था। लेकिन वाम मोर्चा के हमले और उत्पीड़न से बचने के लिए धीरे-धीरे जिला दर जिला भाजपा का बहुमत तृणमूल में चला गया। जैसे-जैसे ममता की ताकत बढ़ी, उनको वाम दलों के समर्थक रहे बंगाल के भद्रलोग यानी बुद्धिजीवियों, कलाकारों ही नहीं, बल्कि हिन्दू धर्म के नाम पर बने धार्मिक संस्थाओं, पंथों सबका साथ मिला। तो तृणमूल कांग्रेस का जो शक्तिशाली ढांचा बना उसमें भाजपाई, अन्य हिन्दुत्ववादी, वामपंथी, कांग्रेसी...सब शामिल थे।

इसकी चर्चा इसलिए आवश्यक है ताकि भाजपा के मौजूदा उत्थान को समझा जा सके। बंगाल आजादी के पूर्व से ही हिन्दुत्व का गढ़ रहा है। अनेक धार्मिक आंदोलन, धर्म-आधारित राष्ट्रीयता का अभियान, हिन्दुत्व प्रेरित क्रांतिकारी आंदोलन, धर्म और समाज सुधार आंदोलन का केंद्र रहा है। हिन्दू महासभा वहां एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति थी। लेकिन जनसंघ और भाजपा ने कभी फोकस करके प. बंगाल पर काम ही नहीं किया। रामजन्मभूमि आंदोलन के समय बंगाल में चारों तरफ जय श्रीराम के नारे गूंजने लगे थे। विहिप और भाजपा ही नहीं, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यक्रमों में भी भारी समूह उमड़ने लगा था। बंगाल की तासीर के अनुरूप उनकी आवाज बनकर उन्हें साथ रखने में भाजपा कामयाब न हो सकी। 2014 के आम चुनाव में नरेन्द्र मोदी का कोलकाता का पहला भाषण ममता के प्रति इतना ज्यादा नरम था कि भाजपा की ओर आने को तत्पर लोग निराश हुए अन्यथा कुछ चमत्कार उसी समय हो जाता।

बंगाल आजादी के पूर्व से ही हिन्दुत्व का गढ़ रहा है। अनेक धार्मिक आंदोलन, धर्म-आधारित राष्ट्रीयता का अभियान, हिन्दुत्व प्रेरित क्रांतिकारी आंदोलन, धर्म और समाज सुधार आंदोलन का केंद्र रहा है। हिन्दू महासभा वहां एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति थी। लेकिन जनसंघ और भाजपा ने कभी फोकस करके प. बंगाल पर काम ही नहीं किया। अयोध्या आंदोलन के समय बंगाल में श्रीराम के नारे गूंजने लगे थे

स्वाभाविक स्थिति

प. बंगाल में भाजपा का उत्थान लंबे समय से स्वयं भाजपा की नासमझी से रुकी हुई राजनीतिक प्रक्रिया की स्वाभाविक स्थिति है। सोचिए, 1990 के आरंभिक दशक का जय श्रीराम नारा जितनी प्रखरता और रोमांच से प. बंगाल में लग रहा है, वैसा अन्य राज्यों में क्यों नहीं? आखिर, ममता और उनके समर्थकों को इस एक नारे ने कितना परेशान कर दिया है कि नारा लगाने वालों पर हमले होते हैं, वे कानूनी कार्रवाई का शिकार होते हैं, कुछ हत्याएं भी हो गईं, लेकिन फिर भी जय श्रीराम गूंज रहा है। इसका आधार पहले से बना था। वाम मोर्चा और फिर तृणमूल के सत्ता आतंक के कारण सब चुप थे। तृणमूल कांग्रेस से कई बड़े नेता भाजपा में आए उससे जनता में संदेश गया कि ममता से मुकाबले के लिए पार्टी तैयार है, लेकिन ये तृणमूल को ज्यादा धक्का देने में सफल नहीं हुए। हां, परिणाम के बाद इनका असर दिख रहा है। तृणमूल के नेता-कार्यकर्ता भाजपा में आ रहे हैं। पूरा का पूरा नगर निगम और नगरपालिका भाजपा में समाहित हो रहा है। मुसलमानों का वह छोटा हिस्सा भी भाजपा की ओर आया है, जो बाहर से आए तथा कट्टरपंथी सुन्नी-सलाफी-बहावी मुसलमानों से परेशान है। कई मोर्चाबंदी में आपको दोनों तरफ मुख्य लड़ाके मुसलमान दिखेंगे। भाजपा ने अमित शाह और मोदी के नेतृत्व कम से कम पार्टी के स्तर पर जो वैचारिक प्रखरता अपनाई है, उसका असर देश भर में है, और बंगाल उससे अछूता नहीं रह सकता था। नेशनल सिटीजनशीप रजिस्टर, घुसपैठियों को निकालने, पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से उत्पीड़ित होकर आए हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन, ईसाई और पारसी को नागरिकता देने के वादे का ममता ने प्रदेश के 29 प्रतिशत मुस्लिम मतों को साथ बनाए रखने के लिए जितना तीखा विरोध किया उससे भाजपा के पक्ष में दूसरे समूहों की एकजुटता बढ़ी है। दुर्गा विसर्जन, रामनवमी जुलूस आदि पर ममता का रवैया तथा मुस्लिम बहुल इलाकों में हिन्दुओं पर हमलों, दंगों में सरकार का निरपेक्ष रहना भाजपा के पक्ष में गया। कारण, भाजपा और संघ परिवार के संगठन उनके पास पहुंचे।

केवल हिन्दुत्व से ही नहीं बनी बात

हालांकि यह मान लेना भी गलत होगा कि केवल हिन्दुत्व के इन मुद्दों के कारण ही भाजपा के पक्ष में ज्वार पैदा हुआ है। प्रधानमंत्री मोदी द्वारा समाज के कमजोर तबकों के लिए आवास, शौचालय, बिजली, उज्जवला के तहत रसोई गैस सिलेंडर, जनधन खाता, मुद्रा योजना से मिले छोटे-छोटे कर्ज आदि जैसे कार्यक्रम मोदी के पक्ष में उन तबकों के मतों को लाए हैं, जिन पर ममता और पहले वाम अपना एकाधिकार समझते थे। इन सब पर मोदी के सैन्य पराक्रम से जुड़े राष्ट्रवाद ने चमत्कार किया है। पहले वाम मोर्चा के कुशासन के कारण उद्योगधंधों और कारोबार के चौपट होने से पैदा हुई भीषण बेरोजगारी और प्रदेश की माली हालत में गिरावट आई और अब ममता सरकार में भी लगभग वही स्थिति कायम रहने के कारण असंतोष बढ़ा है। इसके विपरीत, मोदी ने विश्वास पैदा किया है कि वह विकास कर सकते हैं। ममता ने भी वाम शैली अपनाकर अपनी पार्टी के लोगों को पंचायतों से लेकर, प्रखंड, तहसील, जिला, कमिश्नरी स्तर तक भर दिया। पुलिसप्रशासन में जितना संभव है, प्रवेश कराया। इसके अलावा, शिक्षण संस्थानों, कला-संस्कृति संस्थानों, सामजिक संगठनों, कर्मचारी संगठनों, चेम्बर ऑफ कॉमर्स, अधिवक्ता संगठनों, छात्र संगठनों...तक पर पार्टी का वर्चस्व कायम किया। सरकारी ठेके तथा पुलिस और सरकारी कार्यालयों में दलाली भी उनकी पार्टी के लोगों के हाथों में आ गई। इसमें डर से या तो लोग इनके साथ आ गए या फिर दुबके रहे। जैसे-जैसे भाजपा ने साहस किया ये सीधे उसके साथ आ रहे हैं। इसे तृणमूल के स्थानीय स्तर से लेकर ऊपर तक हर जगह वर्चस्व रखने वालों को चुनौती मिली, उन्हें लगा कि अगर सत्ता गई तो उनकी स्वार्थपूर्ति का रास्ता भी बंद।

उनने पहले लोगों को भयभीत कर रोकने की कोशिश की और बात नहीं बनी तो हिंसा आरंभ कर दी। भाजपा नेतृत्व ने ईंट का जवाब पत्थर से देने की बातें कीं और यहीं से हिंसक हमले से टकराने की शुरुआत हो गई। यह स्थिति लोकतंत्र के लिए चिंताजनक है, लेकिन भाजपा की जगह कोई पार्टी होती तो यही करती। दो ही विकल्प थे-या तो आप चुप रहकर समर्पण कर दो या फिर उनकी हिंसा का जवाब दो। 2017 के पंचायत चुनावों में दूसरे दलों के उम्मीदवारों को पर्चा तक तृणमूल के लोग दाखिल नहीं करने दे रहे थे। बावजूद भाजपा के पांच हजार से ज्यादा प्रतिनिधि निर्वाचित हो गए। जय श्रीराम ममता की नासमझी से प. बंगाल में भाजपा की राजनीति का मुख्य नारा बन गया है, और इससे पूरा प्रदेश आलोड़ित हो रहा है। ईद के दिन ममता ने मुसलमानों की नमाज के बाद उसी मंच से जिस तरह का हमलावर राजनीतिक भाषण दिया उससे भाजपा को ज्यादा लाभ हुआ। पंचायत चुनाव और उसके बाद लोक सभा तथा असेंबली उपचुनावों में भाजपा के मत प्रतिशत में वृद्धि से ममता सतर्क होकर अपनी रणनीति सधी हुई बनातीं तो शायद उनकी जमीन इतनी तेजी से हिलती नहीं। हालांकि पंचायत चुनावों के बाद ममता ने अपने दो मंत्रियों को हटाया, माकपा से निष्कासित सांसद ऋतव्रत बनर्जी के नेतृत्व में आदिवासी कल्याण समिति बनाई। ऐसे और भी कदम उठाए, लेकिन इससे मोदी और भाजपा के बढ़ते असर को रोकना संभव नहीं था, न हुआ। 2021 के चुनाव में भाजपा ममता की सत्ता उखाड़ने में कामयाब होगी या नहीं, इसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती पर पूरे राजनीतिक माहौल तथा उसके उभरने के कारणों को देखें तो इतना स्वीकार करने में हिचक नहीं है कि वह एक बड़ी और प्रभावी राजनीतिक शक्ति के रूप में वहां लंबे समय तक खड़ी रहेगी। ■

इलस्ट्रेशन : जे. पी. त्रिपाठी

हिंसा माने राजनीति

पश्चिम बंगाल की हिंसा पर शोध कर रहे सुजात भद्र के अनुसार, 'शोध करते हुए मैंने जाना कि भारत में सबसे ज्यादा राजनीतिक हिंसा की घटनाएं अगर कहीं हुई हैं, तो वह बंगाल है। हिंसा के पीछे तीन बड़ी वजहें मानी जा रही हैं-बेरोजगारी, कानून-व्यवस्था पर सत्ताधारी दल का वर्चस्व और नई राजनीतिक शक्तियों का प्रवेश। इसमें सांप्रदायिकता का एक तत्व और जुड़ गया है

■ प्रमोद जोशी
वरिष्ठ पत्रकार

पश्चिम बंगाल के चुनावों में हिंसा पहले भी होती रही है, पर इस बार चुनाव के बाद भी जारी है। चुनाव परिणाम आने के बाद कम से कम 15 लोगों की मौत की पुष्ट खबरें हैं। इस राज्य में पिछले सात-दशक के घटनाक्रम पर नजर डालें तो स्पष्ट है कि यहां हिंसा का नाम राजनीति और राजनीति के मायने हिंसा है। वर्ष 2011 में अपनी पार्टी तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी) को जबर्दस्त जीत दिलाकर जब ममता बनर्जी सत्ता के घोड़े पर सवार हुई थीं, तब उनका ध्येयवाक्य था 'पोरीबोर्तन।' आज उनके विरोधी इस ध्येयवाक्य से लैस होकर उनके घर के दरवाजे पर खड़े हैं। बंगाल की हिंसा के पीछे एक बड़ा कारण है यहां के निवासियों की निराशा। देश में आधुनिक राजनीतिकप्रशासनिक और शैक्षणिक संस्थाओं का सबसे पहले जन्म बंगाल में हुआ पर साठ और सत्तर के दशक में इसी बंगाल में नक्सलबाड़ी ने देश का ध्यान खींचा था। उसके केंद्र में हिंसा थी। बंगाल की वर्तमान हिंसा की जड़ों में उस वामपंथी हिंसा की क्रियाप्रतिक्रियाएं ही हैं।

ममता की हिंसा

ममता बनर्जी स्वयं हिंसा के इस पुष्पक विमान पर सवार होकर आई थीं। उन्होंने सीपीएम की हिंसा पर काबू पाने में सफलता पाई थी। उसका आगाज सिंगुर के आंदोलन में हुआ था। सीपीएम ने राज्य की बुनियादी समस्याओं के समाधान की दिशा में राज्य के औद्योगीकरण का जो रास्ता खोजा था, ममता ने उसके छिद्रों के सहारे सत्ता के गलियारों में प्रवेश कर लिया था। आज उनके विरोधी उनके ही औजारों को हाथ में लिए खड़े हैं। बंगाल भाजपा के वरिष्ठ नेता मुकुल राय कभी ममता के दाएं हाथ का काम करते थे। उन्होंने हाल में कहा कि सिंगुर आंदोलन तृणमूल की सबसे बड़ी भूल थी। इस आंदोलन के कारण उद्योग जगत में बंगाल की नकारात्मक छवि बन गई। अब इस बात को सिंगुर की मिट्टी ने भी स्वीकार कर लिया है। सिंगुर में न आज खेती हो रही है, और न कारखाना ही लग पाया है।

सवाल है कि क्या भाजपा भी बंगाल में लाठी-डंडे के जोर पर राजनीति करेगी? भविष्य में क्या होगा, पता नहीं, लेकिन इस वक्त तृणमूल कांग्रेस का जवाब उसी की भाषा में देने की ताकत केवल बीजेपी के पास ही नजर आती है। उधर, ममता ने राजनीति की जो परिभाषा तय कर रखी है, वे उसे बदलने को तैयार ही नहीं हैं। सरकार ने पूंजी निवेश की आकर्षक योजनाएं बनाई हैं पर जगह-जगह हफ्ता वसूली वाले गिरोह सक्रिय हैं, जिन्हें प्रशासनिक वरदहस्त प्राप्त है। बहरहाल, ममता की परीक्षा आगामी असेंबली चुनाव में होगी।

पंचायत चुनाव में हिंसा

पिछले साल मई में जब कर्नाटक विधानसभा चुनाव का प्रचार चल रहा था, पश्चिम बंगाल में पंचायत चुनाव हो रहे थे। मीडिया पर कर्नाटक छाया था, बंगाल पर राष्ट्रीय मीडिया का ध्यान नहीं था, जबकि वहां लोकतंत्र के नाम पर हिंसा का तांडव चल रहा था। पुरुलिया जिले में बीजेपी कार्यकर्ता की हत्या का मामला सामने आने पर इसकी वीभत्सता का एहसास हुआ। बीस साल के त्रिलोचन महतो की लाश घर के पास ही नायलन की रस्सी से लटकी मिली। महतो ने जो टीशर्ट पहनी थी, उस पर एक पोस्टर चिपका मिला। इस पर लिखा था, बीजेपी के लिए काम करने वालों का यही अंजाम होगा। पंचायत चुनाव के दौरान भारी खूनखराबा हुआ। इस चुनाव की खासियत थी मतदान से पहले ही तृणमूल कांग्रेस के एक तिहाई प्रत्याशियों का निर्विरोध चुनाव। अठावन हजार 692 सीटों में 20,076 पर टीएमसी ने बगैर चुनाव लड़े ही कब्जा कर लिया। पिछले 40 साल में पंचायत चुनाव में निर्विरोध चुने जाने का यह सबसे बड़ा रिकॉर्ड था। राज्य में पंचायत चुनाव में निर्विरोध सदस्यों का खेल 1978 से चला आ रहा है। तब से लेकर 2017 तक के निर्विरोध चुने गए उम्मीदवारों की संख्या 23,185 के आसपास रही है। नई बात यह थी कि 1978 से 2017 तक जितने उम्मीदवार निर्विरोध चुने गए, करीब उतने अकेले पिछले साल चुने गए। बंगाल में साठ के दशक से वामपंथी राजनीति के उभार के बाद से ग्रामीण इलाकों में जबर्दस्त हिंसा का बोलबाला है। वर्ष 1977 के बाद से 2011 तक 34 साल तक बंगाल पर वाम मोर्चे का निर्बाध शासन रहा। इस दौरान गांव-गांव में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) की शाखाएं स्थापित हो गईं और राजनीति की जड़ें बहुत गहराई से प्रवेश कर गईं। वामपंथी विचार-दृष्टि के कारण औद्योगिक घराने राज्य छोड़कर भागने लगे। जो बंगाल भारत में औद्योगिक क्रांति का वाहक था, वह नये उद्योगों के लिए तरसने लगा।

सीपीएम का पराभव

बंगाल में ममता के नेतृत्व में तृणमूल कांग्रेस ने 2011 में वैकल्पिक राजनीति के रूप में प्रवेश किया था। तृणमूल कांग्रेस का नारा था 'परिवर्तन।' बहरहाल, राज्य में सत्ता परिवर्तन तो हुआ पर सामाजिक जीवन में बड़ा परिवर्तन नजर नहीं आया। तृणमूल कांग्रेस की हिंसक गतिविधियों के निशाने पर पहले सीपीएम और कांग्रेस थीं। बीजेपी से तो अब मुकाबला हुआ है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के अनुसार, 2016 में बंगाल में राजनीतिक झड़पों की 91 घटनाएं हुईं। इनमें 205 लोग हिंसा के शिकार हुए। 2015 में 131 घटनाएं दर्ज की गई थीं जिनमें 184 लोग हिंसा के शिकार हुए थे। वर्ष 1997 में वाम मोर्चा; सरकार के गृह मंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने विधानसभा में जानकारी दी थी कि 1977 से 1996 तक पश्चिम बंगाल में 28,000 लोग राजनीतिक हिंसा में मारे गए थे।

बंगाल की हिंसा पर शोध कर रहे सुजात भद्र के अनुसार, 'शोध करते हुए मैंने जाना कि भारत में सबसे ज्यादा राजनीतिक हिंसा की घटनाएं अगर कहीं हुई हैं, तो वह बंगाल है। हिंसा के पीछे तीन बड़ी वजहें मानी जा रही हैं-बेरोजगारी, कानून्व्यवस्था पर सत्ताधारी दल का वर्चस्व और नई राजनीतिक शक्तियों का प्रवेश। इसमें सांप्रदायिकता का एक तत्व और जुड़ गया है। रोजगार के अवसर नहीं होने से बेरोजगार युवक कमाई के लिए राजनीतिक पार्टियों से जुड़ रहे हैं ताकि पंचायत और नगर पालिका स्तर पर होने वाले विकास कार्यों के उन्हें ठेके मिल सकें। हफ्ता-वसूली भी उनकी कमाई का जरिया है यानी राज्याश्रय में अपराधों की छूट।

औद्योगिक विकास ठिठका

बंगाल की इस हिंसा के पीछे कोई विचारधारा नहीं है। यहां की वामपंथी सरकारें तमाम सैद्धांतिक बातें करती रहीं पर उन्होंने नौजवानों को रोजगार दिलाने के रास्ते नहीं खोजे। और जब उनकी सरकार ने इस दिशा में सोचना शुरू किया, ममता तकरीबन वैसी ही राजनीति लेकर सामने आईं, जैसी वामपंथी सरकारें चला रही थीं। वर्ष 1977 में वाम मोर्चा सरकार बनाने के पहले सीपीएम बंगाल में संयुक्त मोर्चे की दो सरकारों का नेतृत्व कर चुकी थी। 1967 से 1970 के बीच माकपा ने जिस तेज भूमि-सुधार की योजना बनाई उसे केंद्र सरकार ने सफल नहीं होने दिया और दोनों बार संयुक्त मोर्चा सरकारें बर्खास्त कीं। सीपीएम पर दोहरा दबाव था। एक ओर इसी पार्टी से टूटे लोगों ने सीपीआई (माले) बनाई थी, जिसका दबाव था कि भूमि पर कब्जा तेजी से हो। वहीं, संसदीय राजनीति का दबाव था कि यह काम धीमे और शांतिपूर्ण तरीके से हो। मार्च, 1970 में दूसरी सरकार की बर्खास्तगी के बाद सात साल तक माकपा ने गांवों में संगठित काम किया। इसका लाभ उसे 1977 के चुनाव में मिला पर बंगाल का औद्योगिक विकास निगेटिव हो चुका था।

वामपंथी अंतर्विरोध

वाम मोर्चा के राजनैतिक अंतर्विरोध बढ़ते गए। सीपीएमएल के साथ उसके सबसे अच्छे कार्यकर्ता चले गए। वे अब विरोधी थे, इसलिए उनका दमन भी करना पड़ा। पार्टी संगठन गांव-गांव फैल गया। उसने एक नई संस्कृति को जन्म दिया। जो हमारे साथ हैं, वे दोस्त। जो हमारे साथ नहीं, वे दुश्मन हैं। प्रशासन को पार्टी तंत्र के अधीन कर दिया गया। दरोगा, मुंशी, अध्यापक और डॉक्टर सब ने पार्टी की शरण ली। नहीं ली तो दुश्मनी मोल ली। यहीं से ममता बनर्जी के उद्भव की कथा शुरू हुई।

वर्ष 2006 के चुनाव में वाम मोर्चा को जबर्दस्त जीत मिली। इसके बाद प्रदेश के औद्योगीकरण एवं आधुनिकीकरण का कार्यक्रम शुरू हुआ। आईटी सेक्टर को हड़तालों से बचाने के लिए उसे ट्रेड यूनियनों से बाहर रखा गया। बंगाल के औद्योगिक विकास को रोकने में जिस पार्टी का हाथ था, वही अब जबरन औद्योगीकरण का फॉर्मूला लेकर आई थी। सबसे पहले नंदीग्राम में राज्यप्रायोजित हिंसा का खूनी रूप देखने को मिला। उसके बाद सिंगुर में टाटा की नैनो का कारखाना वापस गया। जंगल महल में माओवादियों के साथ माकपा कार्यकर्ताओं के टकराव ने ऐसी शक्ल ले ली कि वहां चुनाव-बूथ बनाना मुश्किल हो गया। उसी इलाके में 2011 में 85 फीसद तक मतदान हुआ। माकपा के प्रति गुस्से का धधकता ज्वालामुखी बुरी तरह फूट पड़ा। 2011 के चुनाव के पहले बंगाल के गांवों में कई जगह खूनी मुठभेड़ें हुईं। अंततः तृणमूल कांग्रेस ने सीपीएम के वर्चस्व को तोड़ा पर उसने कोई नई व्यवस्था कायम नहीं की। ■

अग्निकन्या ने रक्तचरित्र को बनाया राजनीतिक आदर्श

तिलमिलाहट का तांडव यह

■ सुनील जायसवाल
वरिष्ठ पत्रकार

ममता बनर्जी का मुख्यमंत्रित्व वाला राजधर्म कसौटी पर है। समूचे प्रदेश की स्थिति इतनी रक्ताभ हो चुकी है कि माना जाने लगा है कि वर्तमान में राज्य सरकार की कानून व्यवस्था नियंत्रण से बाहर हो चुकी है। प्रदेश से लेकर दिल्ली संसद तक राजनीतिक गलियारों में धारा 356, राष्ट्रपति शासन को लेकर गहन चिंतन शुरू हो चुका है। इसके उलट मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का एकालाप है कि राज्य में हत्याओं और अराजक स्थिति के लिए भाजपा जिम्मेदार है, जबकि पश्चिम बंगाल भाजपा के पर्यवेक्षक कैलाश विजयवर्गीय का आरोप है कि बंगाल में जो तांडव हो रहा है, उसके पीछे दीदी के गुंडा तत्वों का हाथ है। राज्यपाल केसरीनाथ त्रिपाठी इस संबंध में गृह मंत्री अमित शाह से मिल कर राज्य की विस्फोटक स्थिति और कानून व्यवस्था की मौजूदा हालत से अवगत करा चुके हैं। मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की क्षमता पर भी सवाल खड़े किए हैं। राज्य के पुलिस महकमे पर भी सरकार के इशारे पर निष्क्रिय रहने और तृणमूल पार्टी के अराजक कार्डरों को शह देने का पुख्ता संदेह व्यक्त किया गया है। राज्य में जारी हिंसा, हत्याओं और आगजनी-लूटमार के पीछे रोहंग्या और बांग्लादेशी अवैध घुसपैठियों के सीधे जुड़ाव को गंभीर मामला बताया गया है।

कैसे किया जाए 'अग्निकन्या' का शमन!

गृह मंत्रालय और पीएमओ वैसे भी ममता बनर्जी के असहयोगात्मक रवैये और चुनौती से नाराज चल रहा है। इस 'अग्निकन्या' का कैसे शमन किया जाए, इस विषय को लेकर गहन विचार विमर्श जारी है। देखा जाए तो केंद्र सरकार की चिंता काफी हद तक जायज है। ममता के अड़ियल रवैये से राज्य में कई सारी योजनाएं बाधित हैं, जिनसे राज्य का विकास ठप है। आमजन के लिए कल्याणकारी योजनाएं रुकी पड़ी हैं। राज्य की आर्थिक हालत खस्ताहाल है। दीदी बस अपनी सत्ता कायम रखना चाहती हैं। ठीक उसी तरह जैसे 2011 से पूर्व वाम मोर्चा सरकार कार्डरों के आतंकराज के जोर पर जनभावनाओं को कुचल कर कायम रही थी। दीदी भी राजधर्म भुला चुकी हैं। उन्होंने 'अग्निकन्या' को ही अपना राजनीतिक आदर्श बना लिया है। अब थोड़ा दीदी के 'अग्निकन्या' वाले अवतार पर चर्चा करते हैं। ममता का 'दीदी' के नाम से संबोधन उनके मुख्यमंत्री पद पर पहुचने के बाद तेजी से बंगाल से निकल कर पहले दिल्ली, फिर धीरे-धीरे पूरे भारत के राजनीतिक गलियारों में पुकारा जाने लगा। 'अग्निकन्या' का खिताब उन्हें तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के केंद्र सरकार वाले कार्यकाल में मिला था। वाम मोर्चा सरकार काल की तत्कालीन परिस्थितियों में 'अग्निकन्या' का संबोधन बड़ा ही क्रांतिकारी और बदलाव के प्रतीक के तौर पर लिया गया था। वाम मोर्चा के 35 वर्ष वाले शासन से त्रस्त पश्चिम बंगाल की जनता ने ममता की आक्रामकता को पूर्ण समर्थन दिया। हालांकि उन्हें तनिक भी भान या इलहाम नहीं था कि मात्र 8 वर्ष के सत्ता मद में अग्निकन्या 'भष्मासुर को वरदान' वाले आचरण में होंगी।

भले ही ममता पर परिवारवाद या जातिवादी राजनीति का आरोप नहीं लगा हो, परंतु एकमात्र मुस्लिम तुष्टिकरण ही उनकी सत्ता के लिए घुन साबित हो चुका है। प्रधानमंत्री मोदी प.बंगाल में तत्काल 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू कर तृणमूल सरकार को शहीद कहलाने का मौका देने के मूड में बिल्कुल नहीं होंगे। वैसे भी जो खुद अपनी मौत मर रहा हो तो उसकी प्राकृतिक मौत का इंतजार कर लेना बेहतर होता है

अब थोड़ा पीछे चलते हैं। वर्ष 1999 में जब वाजपेयी की नेतृत्व वाली भाजपा-नीत एनडीए की पहली पूर्ण बहुमत की सरकार केंद्र में बनी तब दीदी को रेल मंत्री बनाया गया था। उस दौर में पश्चिम बंगाल में मुख्यमंत्री ज्योति बसु की वाम मोर्चा सीपीआई-नीत सरकार के खिलाफ आम जनता में जबरदस्त माहौल था। इस सत्ता विरोधी माहौल की केंद्र बिंदु यही ममता बनर्जी थीं। उनके नेतृत्व में समूचे पश्चिम बंगाल में उनकी पार्टी तृणमूल कांग्रेस ने जोरदार आंदोलन छेड़ रखा था। वाम दल के गुंडाराज के खिलाफ शुरू किए गए इस विपक्षी राजनीतिक आंदोलन में ममता की भूमिका इतनी आक्रामक थी कि उन्हें 'अग्निकन्या' के नाम से पुकारा जाने लगा था।

ममता ने ज्योति बसु के लगातार 20 वर्ष वाले लंबे शासन के खिलाफ अपनी राजनीतिक लड़ाई कांग्रेस पार्टी में रहते हुए शुरू की थी। परंतु वह अपने मुकाम तक नहीं पहुंच पा रही थी। केंद्र की कांग्रेस-नीत यूपीए सरकार की चेयरपर्सन सोनिया गांधी से उन्हें उतनी सहयोग नहीं मिल पा रहा था, जितना सीपीआईएम सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए जरूरी थी। कारण रहे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति और विभिन्न क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों वाले यूपीए गठबंधन का कांग्रेस पर पूरी तरह से हावी होना। केंद्र में कांग्रेस सरकार को बनाए रखने में सहयोगी यूपीए में कांग्रेस के सबसे भरोसेमंद साथी वाम दल थे। पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार और केंद्र की कांग्रेस सरकार के बीच 1977 के बाद से ही एक तरह से आपसी पैक्ट हो चुका था। ज्योति बसु बंगाल में और इंदिरा गांधी केंद्र में।

जब इंदिरा गांधी ने भुलाया राजधर्म

यही वजह रही कि पश्चिम बंगाल में तमाम तरह की अराजक स्थितियों, मुख्यमंत्री ज्योति बसु सरकार की जनविरोधी नीतियों के बावजूद तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने केंद्र सरकार के राजधर्म को भुलाए रखा। यहां तक कि बंगाल में उनकी प्रदेश कांग्रेस कमेटी तिलतिल कर मरती चली गई। अंततः वह मालदा में गनीखान चौधरी के परिवार में सिमट गई। और कुछ कोलकाता की शहरी विधानसभा और संसदीय सीटों तक। यह स्थिति आज भी यथावत है।

कांग्रेस आला कमान का यही आचरण ममता बनर्जी के 'अग्निकन्या' वाले फ्रेम में फिट नहीं बैठ रहा था जिससे उन्होंने कांग्रेस से विद्रोह कर तृणमूल कांग्रेस की स्थापना की। आगे चल कर उनके दमदार और आक्रामक राजीनीतिक तेवर ने टीएमसी को पश्चिम बंगाल की सत्ता तक पहुंचा दिया। 2011 से अभी तक उनके नेतृत्व में टीएमसी की सरकार कायम है।

परंतु आज देश का राजनीतिक परिदृश्य बदल चुका है। गुजरात से निकल कर नरेन्द्र मोदी और अमित शाह की जोड़ी ने हिन्दुत्व और नये राष्ट्रवाद के एजेंडे मात्र से कभी देश की सबसे बड़ी राष्ट्रीय पार्टी रही कांग्रेस के साथ ही बसपा, सपा, राजद वाम दलों की चूलें हिला दी हैं। ये सभी पार्टियां सत्ता लोलुपता, परिवारवादिता, जातिवादिता, अगड़ी-पिछड़ी और तुष्टिकरण की राजनीति के कृत्यों का शिकार होकर सिमट कर रह गई हैं। कुछ अपनी स्थापना वाले प्रदेश में ही लुप्त हो जाने के कगार पर हैं। बिल्कुल यही स्थिति तृणमूल कांग्रेस की हो चुकी है। भले ही ममता पर परिवारवाद या जातिवादी राजनीति का आरोप नहीं लगा हो परंतु एकमात्र मुस्लिम तुष्टिकरण ही उनकी सत्ता के लिए घुन साबित हो चुका है। इस बात पर किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। गौरतलब यह भी कि प्रधानमंत्री मोदी पश्चिम बंगाल में तत्काल 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू कर तृणमूल सरकार को शहीद कहलाने का अवसर देने के मूड में बिल्कुल नहीं होंगे। वैसे भी जो खुद अपनी मौत मर रहा हो तो उसे मारकर हत्यारा बनने से बेहतर है कि उसकी प्राकृतिक मौत का इंतजार कर लिया जाए। भले ही डेढ़ वर्ष और सही। ■